जैन धर्म में

प्रभु दर्शन-पूजन मंदिर की मान्यता थी ?

शास्त्रोक्त प्रमाण और तर्क पढ़कर
दिल व दिमाग को दुरुस्त कीजिए

प्रकाशक
श्री जैन श्वे. संघ, मालवाड़ा के ज्ञान खाते से

आद्य लेखक-मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी

संशोधक : 400 तेले के तपस्वी मेवाड़देशोद्धारक
प. पू. आचार्य देवेश श्री जितेन्द्रसूरीश्वरजी म.

मुद्रक : मनोहर प्रेस, ब्यावर ☎256441

चतुर्गति से आये जीवों के लक्षण-

1. स्वर्ग से आया हुआ जीव-दान देने में सदा तत्पर, मधुर भाषी, सदैव प्रभु पूजा करने वाला तथा सद्गुरु सेवा कारक जीव को स्वर्ग से आया हुआ समझना चाहिये।
2. मनुष्य गति से आया हुआ जीव- विनीत, दयालु, सरल, मंदकषाय परिणामी, हर्ष वदन, मध्यम गुण वाला होता है।
3. नरक गति से आया हुआ जीव-स्वजन, मित्र, बन्धुओं से क्लेष करने वाला, रोगी शरीरवाला, अत्यन्त कपटी, कटुभाषी होता है।
4. तिर्यंच गति से आया हुआ जीवः- ईर्षालु, असंतोषी, मायावी, क्षुधातुर, निद्रासक्त, आलसी होता है।

श्रावक लक्षण

(भगवान महावीर के हस्तदीक्षित मुनि श्री धर्मदासजी गणी द्वारा रचित उपदेश माला के आधार से)

श्लोक 230

वंदइ उभओ कालंपि, चेइयांइं थय थुइ परमो,
जिनवर पडिमा घर धूव-पुप्फ गंधच्चणुज्जुत्तो।

अर्थात जो चैत्यों को जिन बिम्बों को द्वि त्रिकाल वन्दना करे, स्तवन स्तुति करे, जिनवर प्रतिमा और चैत्यों की धूप पुष्प और सुगन्धित द्रव्यों से पूजा करने में उद्यमवान हो, वह श्रावक कहलाता है।

(श्लोक - 234)

जो सदाचार और व्रत (अणुव्रतों) में दृढ़ नियम वाला, सामायिकादि 6 आवश्यक में अस्खलित (अतिचार रहित) तथा मधु, मद्य, मांस, पांच उंबर-फल, बहुबीज वाले फल, अनंत काय आदि अभक्ष्य के त्याग वाला होता है, वह श्रावक कहलाता है।

(श्लोक - 246)

जो श्रावक बारह प्रकार के तप, अनन्तकायादि का पच्चक्खाण, शील और सद्गुणों से युक्त है, उसे निर्वाण और विमान के सुख दुष्प्राप्य नहीं।

(योगसागर - श्लोक 33)

श्रावक अनेक प्रकार के कर्मों से लिप्त होने पर भी शुभ भाव पूर्वक किये हुए प्रभु पूजा आदि द्रव्य स्तव से समग्र कर्मों का नाश करके शीघ्र मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

हां ! मूर्तिपूजा शास्त्रोक्त है।

प्रश्न - क्या जैन सूत्रों में मूर्तिपूजा का उल्लेख है?

उत्तर - सूत्रों में उल्लेख तो क्या ! पर सूत्र स्वयं ही मूर्ति है। तद्वत् लिखने वाला मूर्ति, पढ़ने वाला मूर्ति, समझने वाला मूर्ति है, तो सूत्रों में मूर्ति विषयक उल्लेख का तो पूछना ही क्या है? ऐसा कोई सूत्र नहीं जिसमें मूर्ति विषयक उल्लेख न मिलता हो। चाहे ग्यारह अङ्ग, बत्तीस सूत्र और चौरासी आगम देखो, मूर्ति सिद्धान्त व्यापक है, यदि इस विषय के पाठ देखने हो तो हमारी लिखी प्रतिमा छत्तीसी, गयवर विलास और सिद्ध प्रतिमा मुक्तावली नाम की पुस्तकें देखो।

(इस पुस्तक के अन्त में भी कुछ सूत्र पाठ दिये गये हैं।)

प्र. - सूत्रों को आप मूर्ति कैसे कहते हैं?

उ. - मूर्ति का अर्थ है, आकृति (शक्ल) सूत्र भी स्वर, व्यंजन वर्णों की आकृति (मूर्ति) ही तो है।

प्र. - मूर्ति का तो आप वंदन पूजन करते हो, पर आपको सूत्रों का वंदन पूजन करते नहीं देखा।

उ. - क्या आपने पर्युषणों के अन्दर पुस्तकजी का जुलूस नहीं देखा? जैन लोग पुस्तक जी का किस ठाठ से वन्दन पूजन करते हैं !

प्र. - हम लोग तो सूत्रों का वन्दन पूजन नहीं करते हैं।

उ. - यही तो आपकी कृतघ्नता है कि सूत्रों को वीतराग की वाणी समझ उनसे ज्ञान प्राप्त कर आत्मकल्याण चाहते हो और उन वाणी का वन्दन पूजन करने से इन्कार करते हो, इसी से तो आपकी ऐसी बुद्धि होती है। श्री भगवती सूत्र के आदि में गणधर देवों ने 'णमो बंभीए लिवीए'- कहकर स्थापना सूत्र (ज्ञान) को नमस्कार किया है। मूर्ति अरिहन्तों का स्थापना निक्षेप है और सूत्र अरिहन्तों की वाणी की स्थापना है, यों ये दोनों वन्दनीक तथा पूजनीक हैं।

प्र. - महावीर तो एक ही तीर्थंकर हुए हैं, पर आपने (मूर्तिपूजकों ने) तो ग्राम ग्राम में मूर्तियां स्थापन कर अनेक महावीर कर दिये हैं।

उ. - यह अनभिज्ञता का सवाल है कि महावीर एक ही हुए परन्तु भूतकाल में महावीर नाम के अनन्त तीर्थंकर हो गये हैं। इसलिये उनकी जितनी मूर्तियें स्थापित हो उतनी ही थोड़ी हैं। यदि आपकी मान्यता यही है कि महावीर एक हुए हैं तो आपने पन्ने 2 पर महावीर की स्थापना कर उन्हें सिर पर क्यों लाद रखा है ? मन्दिरों में मूर्ति महावीर का स्थापना निक्षेप हैं और पन्नों पर जो -महावीर- ये अक्षर लिखे हैं ये भी स्थापना निक्षेप हैं। इसमें कोई अंतर नहीं है। तब स्वयं तो (अक्षर) मूर्ति को मानना और दूसरों की निन्दा करना यह कहां तक न्याय है? एक नेगेटिव की कई पोजेटीव निकल सकती है।

प्र. - कोई तीर्थंकर किसी तीर्थंकर से नहीं मिलता है पर आपने तो एक ही मन्दिर में चौबीसों तीर्थंकरों को बैठा दिया है।

उ. - हमारा मन्दिर तो बहुत लम्बा चौड़ा है उसमें तो चौबीसों तीर्थंकरों की स्थापना सुखपूर्वक हो सकती है, राजप्रश्नीय सूत्र में कहा है कि एक मन्दिर में 'अट्ठसयं जिणपडिमाणं'। पर आपने तो पांच इंच के छोटे से एक पन्ने में ही तीनों चौबीसी के तीर्थंकर की स्थापना कर रखी है। और उस पन्ने को पोथी में खूब कसकर बांध अपने सिर पर लाद कर सुखपूर्वक फिरते हैं। भला क्या इसका उत्तर आप समुचित दे सकेंगे? या हमारे मन्दिर में चौबीसों तीर्थंकरों का होना स्वीकार करेंगे?

प्र. - सूत्रों में तो तीन चौबीसी का नाम मात्र लिखा है, स्थापना कहां है?

उ. - जो नाम लिखा है वही तो स्थापना है। जब मूर्ति स्वयं अरिहन्तों की स्थापना है तो सूत्र उन अरिहन्तों की वाणी की स्थापना है, इसमें कोई अन्तर नहीं है।

प्र. - सूत्रों के पढने से ज्ञान होता है। क्या मूर्ति के देखने से भी ज्ञान होता है?

उ. - ज्ञान होना या नहीं होना आत्मा का उपादान कारण से सम्बन्ध रखता है। सूत्र और मूर्ति तो मात्र निमित्त कारण हैं, सूत्रों से एकान्त ज्ञान ही होता हो तो जमाली गोशालादि ने भी यही सूत्र पढे थे, फिर उन्हें ज्ञान क्यों नहीं हुआ? और जगवल्लभाचार्य को मूर्ति के सामने केवल चैत्य-वन्दन करने से ही ज्ञान कैसे हो गया? इस प्रकार अनेक पशु पक्षियों व जलचर जीवों को मूर्ति के देखने मात्र से जाति स्मरणादि ज्ञान हो गये हैं, अतः नाम की अपेक्षा स्थापना से विशेष ज्ञान हो सकता है। भूगोल की पुस्तक पढ़ने की अपेक्षा एक नक्शा सामने रक्खो जिससे आपको तमाम दुनिया का यथार्थ ज्ञान हो जायेगा।

प्र.-आप जिन प्रतिमा को जिन सारखी कहते हो क्या यह मिथ्या नहीं है?

उ. - आप ही बतलाइये यदि जिन प्रतिमा को जिन सारखी नहीं कहें तो फिर क्या कहें? उन्हें किनके सारखी कहें। क्योंकि यह आकृति सिवाय जिन के और किसी के सदृश मिलती नहीं, जिससे उनकी इन्हें उपमा देते हैं। जिन प्रतिमा को जिन-सारखी हम ही नहीं कहते हैं किन्तु खास सूत्रों के मूल पाठ में भी उन्हें जिन सारखी कहा है, जैसे -जीवाभिगम सूत्र में यह लिखा है कि "धूवं दाउणं जिनवराण" अर्थात धूप दिया जिनराज को। अब आप विचार करें कि देवताओं के भवनों में जिन-प्रतिमा के सिवाय कौन से जिनराज हैं? यदि हम आपके फोटू को आपके जैसा कहें तो कौनसा अनुचित हुआ? यदि नहीं, तो फिर जिनराज की प्रतिमा को जिन सारखी कहने में क्या दोष है? यदि कुछ नहीं, तो फिर कहना ही चाहिये।

प्र. - यदि मूर्ति जिन सारखी है तो उसमें कितने अतिशय हैं?

उ. - जितने अतिशय सिद्धों में हैं उतने ही मूर्ति में हैं? क्योंकि मूर्ति भी तो उन्हीं सिद्धों ही की है। अच्छा, अब आप बतलाईये कि भगवान की

वाणी के पैंतीस गुण हैं, आपके सूत्रों में कितने गुण हैं?

प्र. - यदि जिन प्रतिमा जिन सारखी है तो फिर उस पर पशु पक्षी बीटें क्यों कर देंते हैं? उनको अर्पण किया हुआ नैवेद्य आदि पदार्थ मूषक मार्जार क्यों ले जाते हैं? तथा उन्हें दुष्ट लोग हड्डियों की माला क्यों पहना देते हैं? उनके शरीर पर से आभूषण आदि चोर क्यों ले जाते हैं? एवं मुसलमान लोगों ने अनेक मन्दिर मूर्तियाँ तोड़ कैसे डाली ? इत्यादि ।

उ. - हमारे वीतराग की यही तो वीतरागता है कि उन्हें किसी से रागद्वेष या प्रतिबन्ध का अंश मात्र नहीं है। चाहे कोई उन्हें पूजे या उनकी निन्दा करे, उनका मान करे या अपमान करे, चाहे कोई द्रव्य चढ़ा जावे, या ले जावे, चाहे कोई भक्ति करे या आशातना करे। उन्हें कोई पुष्पाहार पहिना दे या कोई अस्थिमाला लाकर गले में डाल दे, इससे क्या ? वे तो राग द्वेष से परे हैं उन्हें न किसी से विरोध है, और न किसी से सौहार्द, वे तो सम भाव में हैं, देखिये-भगवान् पार्श्वनाथ को कमठ ने उपसर्ग दिया और धरणेन्द्र ने भगवान की भक्ति की, पर प्रभु पार्श्वनाथ का तो दोनों पर समभाव ही रहा है। जैसा कि कहा है-

कमठे धरणेन्द्रे च, स्वोचितं कर्म कुर्वति ।
प्रभु स्तुल्य मनोवृत्तिः, पार्श्वनाथः श्रियेऽस्तु वः ॥

भगवान महावीर के कानों में ग्वाले ने खीलें ठोकीं, वैद्य ने खीलें निकाल लीं, परन्तु भगवान का दोनों पर समभाव ही रहा, जब स्वयं तीर्थङ्करों को समभाव है तो उनकी मूर्तियों में तो समभाव का होना स्वाभाविक ही है। अच्छा! अब हम थोड़ा सा आपसे भी पूछ लेते हैं कि जब वीतराग की वाणी के शास्त्रों में पैंतीस गुण कहे हैं तो फिर आपके सूत्रों को कीड़े कैसे खा जाते हैं? तथा यवनों ने उन्हें जला कैसे दिया? और चोर उन्हें चुराकर कैसे ले जाते हैं ? क्या इससे सूत्रों का महत्त्व घट जाता है ? यदि नहीं तो इसी भांति मूर्तियों का भी समझ लीजिये?

मित्रों! ये कुतर्के केवल पक्षपात से पैदा हुई हैं, यदि समदृष्टि से देखा जाय तब तो यही निश्चय ठहरता है कि ये मूर्तिएँ और सूत्र, जीवों के कल्याण करने में निमित्त कारण मात्र हैं। इन की सेवा, भक्ति, पठन,

श्रवणादि से परिणामों की शुद्धता-निर्मलता होती है। यही आत्मा का विकास है, इसलिये मूर्तिएँ और सूत्र वन्दनीय पूजनीय हैं।

प्र. - प्रतिमा पूजने ही से मोक्ष होता हो तो फिर तप, संयम आदि कष्ट-क्रिया की क्या जरूरत है?

उ. - प्रतिमा पूजन मोक्ष का कारण है, इसमें कोई सन्देह नहीं है फिर भी यदि आपका यह दुराग्रह है तो स्वयं बताईये कि तुम दान शील से मोक्ष मानते हो, वह क्यों ? कारण यदि दान शील से ही तुम्हें मोक्ष-प्राप्ति हो जाती है तो फिर दीक्षा लेने का कष्ट क्यों किया जाता है? परन्तु बन्धुओ ! यह ऐसा नहीं है-यद्यपि दानशील एवं मूर्तिपूजन ये सब मोक्ष के कारण हैं फिर भी जैसै-गेहूँ धान्य बीज रूप गेहूँ से पैदा होता है। फिर भी ऋतु, जल, वायु और भूमि की अपेक्षा रखता है, वैसे ही ये मूर्ति पूजन आदि भी तप, संयम आदि साधनों की साथ में आवश्यकता रखते हैं। समझे न?

प्र. - यदि मूर्तियाँ वीतराग की हैं और वीतराग तो त्यागी थे फिर उनकी मूर्तियों को भूषणादि से अलंकृत कर उन्हें भोगी क्यों बनाया जाता है?

उ. - जो सच्चे त्यागी हैं वे दूसरों से बनाये भोगी नहीं बन सकते, यदि बनते हों तो तीर्थङ्कर समवसरण में रत्नखचित सिंहासन पर विराजते हैं पीछे उनके भामण्डल (तेजोमंडल) ऊपर अशोक वृक्ष, सिर पर तीन छत्र और चारों और इंद्र चमर के फटकारे लगाया करते हैं। आकाश में धर्म चक्र एवं महेन्द्रध्वज चलता है तथा सुवर्ण कमलों पर वे सदा चलते हैं, ढीचण प्रमाणे पुष्पों के ढेर एवं सुगन्धित धूप का धुंआ चतुर्दिश में फैलाया जाता है, कृपया कहिये, ये.चिन्ह भोगियों के हैं या त्यागियों के? यदि दूसरे की भक्ति से त्यागी भोगी बन जाय तो फिर वे वीतराग कैसे रहे? असल बात तो यह है कि भावुकात्मा जिन- मूर्ति का निमित्त लेकर वीतराग की भक्ति करते हैं इससे उनके चित्त की निर्मलता होती है और क्रमशः मोक्ष पद की प्राप्ति भी हो सकती है।

प्र. - मन्दिरों में अधिष्ठायक देवों के होते हुए भी चोरियें क्यों होती हैं ?

उ. - यह तो स्थापना है पर प्रभुवीर के पास एक करोड़ देवता होने पर भी समवसरण में में दो साधुओं को गोशाला ने कैसे जला दिया था? भला भवितव्यता को भी कोई टाल सकता है?

प्र. - जो लोग यह कहते हैं कि "पाछा क्यों आया मुक्ति जाय के जिनराज प्रभुजी" इसका आप क्या उत्तर देते हैं?

उ. - "पाछा इम आया, निन्हव प्रगट्या है आरे पाँचवें"-हम लोग तो मूर्तियों को तीर्थङ्करों के शास्त्रानुसार स्थापना निक्षेप मान के स्थापित करते हैं, पर ऐसा करने वाले खुद ही मोक्ष प्राप्त सिद्धों को वापिस बुलाते हैं। देखिये, वे लोग हर वक्त चौवीसस्तव करते हैं तो एक 'नमोत्थुणं' अरिहन्तों को और दूसरा सिद्धों को देते हैं। सिद्धों के "नमोत्थुणं" में 'पुरिस सीहाणं' पुरिसवर पुण्डरीयाणं, पुरिसवर गन्ध हत्थीणं' इत्यादि कहते हैं। पुरुषों में सिंह और वर गन्ध हस्ती समान तो जब ही होते हैं कि वे देहधारी हो। इस 'नमोत्थुणं' के पाठ से तो वे लोग सिद्धों को पीछा बुलाते हैं, फिर भी तुर्रा यह कि अपनी अज्ञता का दोष दूसरों पर डालना। सज्जनों! जरा सूत्रों के रहस्य को तो समझो, ऐसे शब्दों से कितनी हानि और कर्म बन्धन होता है। हमारे सिद्ध मुक्ति पाकर वापिस नहीं आए हैं। पर मोक्ष-प्राप्त सिद्धों की प्रमाणिकता इन मूर्तियों द्वारा बताई गई हैं कि जो सिद्ध मुक्त हो गए हैं उनकी ये मूर्तियें हैं।

प्र. - यदि ये मूर्तियें सिद्धों की हैं तो इन पर कच्चा पानी क्यों डालते हो?

उ. - भगवान महावीर मुक्त हो गए, अब तुम फिर यह क्या कहते हो कि अमुक दिन भगवान गर्भ में आए, भगवान का जन्म हुआ, इन्द्र मेरु पर ले जाकर हजारों कलशों से भगवान महावीर का स्नात्र महोत्सव किया इत्यादि जो आप मुंह से कहते हैं, यह क्या है? यह भी तो प्रच्छन्न रूपेण मूर्ति-पूजन ही को सिद्ध करता है, भेद केवल इतना ही है कि तुम तो मात्र वाणी से कहते हो और हम उसे साक्षात् करके दिखा देते हैं।

प्र. - कई लोग कहते हैं कि "मुक्ति नहीं मिलसी प्रतिमा पूजियां, क्यों झोड़ मचावो?" इसके उत्तर में आपका क्या परिहार है।

उ. - टेर का उत्तर ही टेर होना चाहिए, अतः हम प्रत्युत्तर में "पूजा बिना मुक्ति न मिले, क्यों कष्ट उठावो?" यह टेर कहते हैं।

प्र. - प्रतिमा पूजकर कोई मुक्त हुआ है?

उ. - सिद्धों में ऐसा कोई जीव नहीं, जो बिना प्रतिमा-पूजन के मोक्ष

को गया हो, चाहे वे मनुष्य के भव में या चाहे देवताओं के भव में ही, परन्तु वे मोक्षार्थ मूर्तिपूजक अवश्य हैं।

प्र. - जब तो जो मोक्ष का अभिलाषी (मुमुक्षु) हो उसे जरूर मूर्ति पूजन करना चाहिये?

उ. - इसमें क्या संदेह है? क्योंकि आज जो मूर्ति नहीं पूजते हैं अथवा नहीं मानते हैं, उन्हें भी यहाँ पर नहीं तो देवलोक में जा कर तो जरूर सर्व प्रथम मूर्ति पूजन करना पड़ेगा। हाँ! यदि मूर्ति-द्वेष के पाप के कारण उन्हें नरक या तिर्यंच योनि का नसीब हुआ हो तो भले ही वे एक बार मूर्ति पूजा से बच सकते हैं, अन्यथा देवलोक में मूर्ति पूजन जरूर करना ही होगा।

प्र. - देवलोक में जाकर मूर्ति-पूजन करना पड़ेगा ही, इसका आपके पास क्या प्रमाण है?

उ. - देवलोक का कुलाचार है और वे उत्पन्न होते ही यह ही विचार करते हैं कि मुझे पहला क्या करना और पीछे क्या करना और पहले व पीछे क्या करने से हित-सुख कल्याण और मोक्ष का कारण होगा? उसके उत्तर में यह ही कहा है कि पहले पीछे मूर्ति का पूजन करना ही मोक्ष का कारण है। देखो राजप्रश्नीय सूत्र और जीवाभिगम सूत्र का मूल पाठ।

प्र. - कई कहा करते हैं कि "परचो नहिं पूरे पार्श्वनाथजी, सब झूठी बांतां।"

उ. - इसके उत्तर में यही "परचो पूरे है पार्श्वनाथजी, मुक्ति के दाता" ठीक है, क्योंकि परचा का अर्थ लाभ पहुँचाना है। अर्थात मनोकामना सिद्ध करना, जो भव्यात्मा प्रभु पार्श्वनाथ की सेवा पूजा भक्ति करते हैं उन्हें पार्श्वनाथजी अवश्य परचो दिया करते हैं (उसे लाभ पहुँचाया करते हैं) उसकी मनोकामना सिद्ध करते हैं, भक्तों की प्रधान मनोकामना मोक्ष की होती है और सबसे बढकर लाभ भी यही है, यदि पार्श्वनाथ परचो नहीं देवे तो फिर उनकी माला क्यों फेरते हो? स्तवन क्यों गाते हो? तथा लोगस्स में हरवक्त उनका नाम क्यों लेते हो?

प्र. - सूत्रों में चार निक्षेप बतलाए हैं, जिनमें भाव निक्षेप ही वन्दनीय है।

उ. - यदि ऐसा ही है तो फिर नाम क्यों लेते हो! अक्षरों में क्यों स्थापना करते हो, अरिहन्त मोक्ष जाने के बाद सिद्ध होते हैं, वे भी तो अरिहन्तों का द्रव्य निक्षेप हैं, उनको नमस्कार क्यों करते हो? बिचारे भोले लोगों में भ्रम डालने के लिये ही कहते हो कि "एक भाव निक्षेप ही वन्दनीय है", यदि ऐसा ही है तो उपरोक्त तीन निक्षेपों को मानने की क्या जरूरत है, परन्तु करो क्या? न मानों तो तुम्हारा काम ही न चले, इसी से लाचार हो तुम्हें मानना ही पड़ता है। शास्त्रों में कहा है कि जिसका भाव निक्षेप वन्दनीय है उसके चारों निक्षेप वन्दनीय हैं और जिसका भाव निक्षेप अवन्दनीय है उसके चारों निक्षेप भी अवन्दनीय हैं। एक आनंद श्रावक का ही उदाहरण लीजिये, उसने अरिहन्तों को तो वन्दनीय माना, और अन्य तीर्थियों को वन्दन का त्याग किया। यदि अरिहन्तों का भाव निक्षेप वन्दनीय और तीन निक्षेप अवन्दनीय है तो अन्य तीर्थङ्करों का भाव निक्षेप अवन्दनीय और शेष तीन निक्षेप वन्दनीय ठहरते हैं, पर ऐसा नहीं होता, देखिये-

अरिहन्तों के चार निक्षेप :-

(1) नाम निक्षेप - अरिहन्तों का नाम वन्दनीय।

(2) स्थापना निक्षेप - अरिहन्तों की मूर्ति या अरिहन्त आदिनाथ महावीर ऐसे लिखे हुए अक्षर वन्दनीय ।

(3) द्रव्यनिक्षेप - भाव अरिहन्तों की तरह भूत, भविष्यकाल के अरिहन्त वन्दनीय।

(4) भावनिक्षेप - समवसरण स्थित अरिहन्त वन्दनीय जैसे सीमंधर स्वामी।

अन्य तीर्थियों के चार निक्षेप

(1) नामनिक्षेप - अन्य तीर्थियों का नाम निक्षेप अवन्दनीय ।

(2) स्थापना निक्षेप - अन्य तीर्थङ्करों की मूर्ति अवन्दनीय ।

(3) द्रव्यनिक्षेप - भाव निक्षेप का भूत भविष्यकाल के अन्य तीर्थङ्कर अवन्दनीय।

(4) भावनिक्षेप - वर्तमान के अन्य तीर्थङ्कर अवन्दनीय।

यह सीधा न्याय है कि सतीर्थियों के जितने निक्षेप वन्दनीय हैं, उतने ही अन्य तीर्थियों के अवन्दनीय हैं अर्थात् स्व तीथियों के चारों निक्षेप वन्दनीय

हैं और अन्य तीर्थियों के चारों निक्षेप अवन्दनीय हैं।

प्र. - मूर्ति जड़ है उसको पूजने से क्या लाभ?

उ. - जड़ में इतनी शक्ति है कि चैतन्य को हानि-लाभ पहुँचा सकता है। सिनेमा T.V. चित्र लिखित स्त्री जड़ होने पर भी चैतन्य का चित्त चंचल कर देती है। जड़ कर्म चैतन्य को शुभाऽशुभ फल देते हैं। जड़ भांग, चैतन्य को भान (होश) भुला देती है। जड़ सूत्र चैतन्य को सद्बोध कराते हैं, जड़ मूर्ति चैतन्य के मलिन मन को निर्मल बना देती है। मित्रो! आजकल का जड़ मैस्मरेज्म और साइन्स कैसे 2 चमत्कार दिखा रहे हैं, फिर यहाँ जड़ के बारे में कोई शंका न करके केवल मूर्ति को ही जड़ जान उससे कुछ लाभ न मानना, अपनी मन्द बुद्धि का द्योतक नहीं तो और क्या है? 1000 का नोट गुमने पर होश उड़ जाते है व रास्ते में मिलने पर खुश खुश हो जाते हो, ऐसा ही प्रतिमा-मूर्ति को समझना।

प्र. पाँच महाव्रत की पच्चीस भावना और श्रावक के 19 अतिचार बतलाये हैं। पर मूर्ति की भावना या अतिचार को कहीं भी नहीं कहा, इसका कारण क्या है?

उ. - दर्शन की प्रस्तुत भावना में शत्रुंजय, गिरनार, अष्टापदादि तीर्थों की यात्रा करना आचारांगसूत्र में बतलाया है और मूर्ति के अतिचार रूप 84 आशातनाएँ चैत्यवन्दन भाष्यादि में बतलाई हैं, यदि मूर्ति पूजा ही इष्ट नहीं होती तो तीर्थ-यात्रा और 84 आशातना क्यों बतलाते ?

प्र. - तीन ज्ञान (मति श्रुति और अवधिज्ञान) संयुक्त तीर्थङ्कर गृहवास में थे, उस समय भी किसी व्रतधारी साधु श्रावक ने उन्हें वन्दन नहीं किया, तो अब जड़ मूर्ति को कैसे वंदन करे?

उ. - तीर्थङ्कर तो जिस दिन से तीर्थङ्कर नाम कर्म बंधा उसी दिन से वन्दनीय हैं। जब तीर्थङ्कर गर्भ में आये थे, तब सम्यक्त्वधारी, तीन ज्ञान संयुक्त शक्रेन्द्र ने "नमोत्थुणं" देकर वंदन किया था। ऋषभदेव भगवान के शासन के साधु श्रावक जब चौबीसस्तव (लोगस्स) कहते थे, तब अजितादि 23 द्रव्य तीर्थङ्करों को नमस्कार (वंदना) करते थे, "नमोत्थुणं" के अंत में पाठ है कि-

जेअइया सिद्धा, जे अ भविस्संति णागए काले।
संपइअ वट्टमाणा, सव्वे तिविहेण वंदामि ॥

इसमें कहा गया है कि जो तीर्थङ्कर हो गये हैं, और जो होने वाले हैं और जो वर्तमान में विद्यमान हैं, इन सब को मन, वचन, काया से नमस्कार करता हुँ। फिर भी आप तेरह पंथियों से तो अच्छे ही हो, तेरह पंथी तो भगवान को चूका बतलाते हैं, आप अवंदनीय बतलाते हैं, परन्तु भगवान के दीक्षा लेने के बाद भी किसी साधु श्रावक ने उन्हें वन्दना नहीं की, तो क्या आप भी भगवान को दीक्षा की अवस्था में अवन्दनीय ही मानते हैं? क्योंकि आपकी दृष्टि से साधु श्रावक जितना भी गुण उस समय (दीक्षाऽवस्था) में भगवान् में न होगा? मित्रो ! अज्ञानता की भी कुछ हद हुआ करती है !

प्र. - मूर्ति में गुण स्थान कितना पावे?

उ. - जितना सिद्धो में पावे, क्योंकि मूर्ति तो सिद्धों की है। एवं जीवों के भेद योगादि समझें।

प्र. - श्रावक के 12 व्रत हैं मूर्ति-पूजा किस व्रत में है ?

उ. - मूर्ति पूजा, मूल सम्यक्त्व में है, जिस भूमि पर व्रतरूपी महल खड़ा है वह भूमि समकित है।आप बतलाईये शम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा, आस्था 12 व्रतों में से किस व्रत में है? यदि कहो कि यह तो सम्यक्त्व के लक्षण हैं तो मूर्ति पूजा भी समकित को निर्मल करने वाली व्रतों की माता है। मूर्ति-पूजा का फल यावत् मोक्ष बतलाया है। तब व्रतों का फल यावत् बारहवां देवलोक (स्वर्ग) ही बतलाया है। और समकित के बिना व्रतों की कोई कीमत भी तो नहीं है।

जैनमूर्ति को नहीं मानने वाले लोग मांस मदिरादि भक्षक भैंरू, भवानी, यक्षादिदेव और पीरपैगम्बर आदि देवों को वन्दन पूजन कर सिर झुकाते हैं, यही उनकी अधिकता है। गाय को हरी घांस खाने को नहीं मिलती तो सूखी या सड़ी घांस ही खा लेती है।

प्र. - पत्थर की गाय को दोहे तो क्या वह दूध दे सकती है? यदि नहीं तो फिर पाषाण की मूर्ति कैसे मोक्ष दे सकती है ?

उ. - हां ! जैसे मूर्ति मोक्ष का कारण है वैसे ही पत्थर की गाय भी दूध का कारण हो सकती है। जैसे किसी मनुष्य ने पत्थर की गाय देखी। उससे उसको असली गाय का भान जरूर हो गया कि गाय इस शक्ल की होती है , फिर वह किसी समय जंगल में भूखा प्यासा भटक रहा हो और उसन

जंगल में एक चरती हुई गाय देखी तो वह झट उस पूर्व दृष्ट ज्ञान से उसका दूध निकाल अपनी भूख-प्यास को बुझा सकता है। क्या वह पत्थर की गाय का प्रभाव नहीं है ? मित्रो आखिर तो नकली से ही असली का ज्ञान होता है। जैसे छठा गुण स्थान पर प्रमादावस्था में नकली साधु है, पर आगे चलकर वह ही तेरहवें गुण स्थान पर पहुँच सकता है।

प्र. - क्या पत्थर का सिंह प्राणियों को मार सकता ?

उ. - हां पत्थर का सिंह भी मार सकता है? इतना ही नहीं पर पत्थर का सिंह देखने वाला अपनी जान भी बचा सकता है। यों समझिये कि यदि किसी ने पत्थर के सिंह से वास्तविक सिंह का ज्ञान प्राप्त किया हो और वह फिर जंगल में चला जाए और वहां उसे असली सिंह मिल जाय तो वह शीघ्र वृक्षादि पर चढ़ कर अपने प्राण बचा सकता है, अन्यथा नहीं बचा सकता। देखा पत्थर के सिंह का प्रभाव !

प्र. - एक विधवा औरत अपने मृत पति का फोटू पास में रखके प्रार्थना करे कि स्वामिन् मुझे सहवास का आनन्द दो, तो क्या फोटू आनन्द दे सकता है।

उ. - इसका उत्तर जरा विचारणीय है, जैसे विधवा अपने मृत पति का फोटू अपने पास रख उससे भौतिक आनन्द की आकांक्षा रखती है तो उसे कोई आनन्द नहीं मिलता, कारण भौतिक आनंद देने में भौतिक देह के अस्तित्व की आवश्यकता है और वह देह इस समय है नहीं। इसका अधिष्ठाता उसका प्राण वायु और वह शरीर इस समय है नहीं फिर उसे आनंद कहां से मिले ?

अस्तु, आपका तो मूर्ति से द्वेष मालूम होता है। इसी से आप ऐसा प्रश्न करते हैं। नहीं तो माला तो आप भी हमेशा फेरते हो और उससे आत्म-कल्याण की भावना रखते हो, ऐसे ही विधवा भी यदि हाथ में माला ले अपने पति के नाम को रटे तो क्या उस स्मरण मात्र से उसका पति उस विधवा की इच्छाएं पूर्ण कर सकता है? कदापि नहीं। तब माला लेना और फेरना भी व्यर्थ हुआ। सज्जनो ! नाम लेने में तो एक नाम निक्षेप ही है पर मूर्ति में नाम और स्थापना दोनों निक्षेप विद्यमान हैं, इसलिए नाम रटने

की अपेक्षा मूर्ति की उपासना अधिक फलदायक है, क्योंकि मूर्ति में स्थापना के साथ नाम भी आ जाता है। जैसे आप किसी को यूरोप की भौगोलिक स्थिति मुंह जबानी समझाते हैं, परन्तु समझने वाले के हृदय में उस वक्त यूरोप का हूबहु चित्र चित्त में नहीं खिच सकेगा। जैसा आप यूरोप का लिखित मानचित्र (नक्शा) उसके सामने रख उसे यूरोप की भौगोलिक स्थिति का परिचय कराते हैं। इससे सिद्ध होता है कि केवल नाम के रटने से-मूर्ति को देखते हुए नाम का रटना विशेष लाभदायक है।

प्र. - आप मूर्ति को पूजते हो तो मूर्ति के बनाने वाले को क्यों नहीं पूजते?

उ. - आप अपने पूज्यजी को वन्दना करते हो परन्तु उनके गृहस्थावस्था के माता पिता जिन्होंने उनका शरीर गढ़ा है उन्हें वन्दना क्यों नहीं करते हो? पूज्यजी से तो उनको पैदा करने वाले आपके मतानुसार अधिक ही होंगे।

प्र. - मूर्ति सिलावट के यहां रहती है तब तक आप उसे नहीं पूजते और मन्दिर में प्रतिष्ठित होने के बाद उसे पूजते हो, उसका क्या हेतु है?

उ. - आप वैरागी को दीक्षा देते हैं दीक्षा लेने के पूर्व तो उसे कोई तिक्खुत्तो की वन्दना नहीं करता और दीक्षा लेने के बाद उसी वक्त वन्दना करने लग जाते हो तो क्या दीक्षा आकाश में घूमती थी, जो एक दम-वैरागी के शरीर में घुस गई कि वह वन्दनीक बन गया?

प्र. - उनको (वैरागी को) तो सामायिक का पाठ सुनाया जाता है इससे वह वन्दनीय हो जाता है।

उ. - इसी तरह मूर्ति की भी मंत्रो द्वारा प्राण प्रतिष्ठा की जाती है। जिससे वह भी वन्दनीय हो जाती है।

प्र. - सिलावट के घर पर रही नई मूति की आप आशातना नहीं टालते और मन्दिर में आने पर उसकी आशातना टालते हो। इसका क्या कारण है?

उ. - गृहस्थों के मकान पर जो लकड़ी का पाट पड़ा रहता है उस पर आप भोजन करते हैं. बैठते है, एवं अवसर पर जूता भी रख देते हैं परन्तु जब वही पाट साधु अपने सोने के लिये ले गये हो तो आप उसकी आशातना टालते हो। यदि अनुपयोग से आशातना भी हो गई हो तो प्रायश्चित्त लेते हो। इसका

क्या रहस्य है? जो कारण तुम्हारे यहां है वही हमारे भी समझ लीजिये। मूर्ति की प्राण प्रतिष्ठा होने से उसमें दैवी गुणों का प्रादुर्भाव होता है।

प्र. - पाषाण मूर्ति तो एकेन्द्रिय होती है। उसकी पंचेन्द्रिय मनुष्य पूजन करके क्या लाभ उठा सकते हैं।

उ. - ऐसा कोई मनुष्य नहीं है कि वह पत्थर की उपासना करता हो कि हे पाषाण! मुझे संसार सागर से पार लगाईए, किन्तु वे तो मूर्ति में प्रभु गुण का आरोपण कर एकाग्रचित से उसी प्रभु की उपासना व प्रार्थना करते हैं। नमोत्थुणं कह कर परमात्मा के गुणों का ध्यान में स्मरण करते हैं। पर सूत्रों के पृष्ठ भी जड़ हैं, आप उन जड़ पदार्थ से भी ज्ञान हासिल कर सकते हैं, यह स्वतः समझ लीजिये।

प्र.- मंदिर तो बारहवर्षी दुष्काल में बने हैं, अतः यह प्रवृत्ति नई है।

उ - बारह वर्षी दुष्काल कब पड़ा था, आप को यह मालूम है?

प्र. - सुना जाता है कि 1000 वर्ष पहिले बारह वर्षी काल पड़ा था।

उ. - सुना हुआ ही कहते हो या स्वयं शोधखोज करके कहते हो, महरबान! जरा सुनें और सोचें, पहला बारहवर्षी काल चतुर्दश पूर्वधर आचार्य भद्रबाहु स्वामी के समय पड़ा था, जिसे आज 2300 वर्ष के करीब होते हैं। और दूसरा बारहवर्षी काल दशपूर्वधर वज्र स्वामी के समय में पड़ा था, उसे करीब 1900 वर्ष होते हैं। आपके मताऽनुसार बारहवर्षी दुष्काल में ही मंदिर बना यह मान लिया जाय तो पूर्वधर श्रुत केवलियों के शासन में मंदिर बना और उसका अनुकरण 2300 वर्ष तक धर्मधुरंधर आचार्यो ने किया और करते हैं। तो फिर लोंकाशाह को कितना ज्ञान था कि उन्होंने मंदिर का खण्डन किया और उन पूर्व आचार्यो को अज्ञानी मान लिया। मन्दिरों की प्राचीनता सूत्रों म तो है ही, पर आज इतिहास के अन्वेषण से मन्दिरों के अस्तित्व को महावीर के समय में विद्यमान बताते हैं। देखिये (1) उड़ीसा प्रांत की हस्तीगुफा का शिलालेख, जिसमें महामेघ वाहन चक्रवर्ती, राजा खारवेल, जिसने-अपने पूर्वजों के समय मगध के राजा नन्द ऋषभदेव की जो मूर्ति ले गये थे उसे वापिस ला आचार्य हस्ति सूरि से

प्रतिष्ठा कराई थी। यह मूर्ति राजा श्रेणिक ने बनाई थी (2) विशाला नगरी की खुदाई से जो मूर्तियों के खण्डहर निकले हैं, उन्हें शिल्पशास्त्रियों ने 2200 वर्ष प्राचीन स्वीकार किये हैं। (3) मथुरा के कंकाली टीला को अंग्रेजों ने खुदवाया, उसमें से जैन, बौद्ध और हिन्दू मंदिर मूर्तियों के प्रचुरता से भग्नाऽवशेष प्राप्त हुए हैं, उन पर शिलाक्षरन्यास भी अंकित है, जिनका समय विक्रम पूर्व दो तीन शताब्दी का है। (4) आबू के पास मुण्डस्थल नाम का तीर्थ है वहां का शिलालेख प्रगट करता है कि वहां महावीर अपने छद्मस्थपने के सातवें वर्ष पधारे थे। उसी समय वहां पर राजा नन्दिवर्धन ने मन्दिर बनाया (5) कच्छ भद्रेश्वर में वीरात् 23 वर्ष बाद का मन्दिर है। जिसका जीर्णोद्वार दानवीर जगडुशाह ने कराया। (6) ओशिया और कोरटा के मन्दिर वीरात् 70 वर्ष बाद के हैं जो आज भी विद्यमान हैं । क्या इस ऐतिहासिक युग में कोई व्यक्ति यह कह सकता है कि मंदिर बनाने की प्रारम्भिकता को केवल 1000 वर्ष ही हुए हैं? कदापि नही, यदि आपको इनसे भी विशेष प्रमाण देखने की इच्छा हो तो, देखो, मेरी लिखी "मूर्ति पूजा का प्राचीन इतिहास" नामक पुस्तक ।

प्र. - यह भी सुना जाता है कि मन्दिर मार्गियों ने मन्दिरों में धाम धूम, और आरम्भ बहुत बढा दिया, इस हालत में हम लोगों ने मन्दिरों को बिलकुल छोड़ दिया।

उ. - सिर पर यदि बाल बढ़ जाये तो क्या बालों के बदले सिर को उड़ा देना योग्य है? यदि नहीं तो फिर मन्दिरों में आरम्भ बढ़ गया तो आरम्भ और धाम धूम नहीं करने का उपदेश देना था, पर मन्दिर मूर्तियों का ही इनके बदले निषेध करना तो बालों के बदले सिर काटना ही है। जैसे जब शीतकाल आता है तब सभी जन विशेष वस्त्र धारण करते हैं। उस प्रकार जब आडम्बर का काल आया तब धाम धूम (विशेष भक्ति) बढ गए, तो क्या बुरा हुआ? फिर भी अनुचित था तो इसे उपदेशों द्वारा दूर करना था न कि मन्दिरों को छोड़ना। धामधूम का जमाने ने केवल मन्दिरों पर ही नहीं परन्तु सब वस्तु पर समान भाव से प्रभाव डाला है। आप स्वयं सोचें कि

आरम्भ से डरने वाले लोगों के पूज्यजी आदि स्वयं बड़े बड़े शहरों में चातुर्मास करते हैं। उनके दर्शनार्थी हजारों भावुक आते हैं। उनके लिये चन्दा कर चौका खोला जाता है।

रसोईये प्रायः विधर्मी ही होते हैं, नीलण, फूलण और कीड़ों वाले छाणे (कण्डे) और लकड़ियाँ जलाते हैं। पर्युषणों में खास धर्माऽऽराधन के दिनों में बड़ी बड़ी भट्टियाँ जलाई जाती हैं दो दो तीन तीन मण चावल पकाते हैं जिनका गरम गरम (अत्युष्ण) जल भूमि पर डाला जाता है, जिससे असंख्य प्राणी मरते हैं, बताइये क्या आपका यही परम पुनित अहिंसा धर्म है? हमारे यहाँ मदिरों में तो एकाध कलश ठण्डा जल और एकाध धूपबत्ती काम में ली जाती है। उसे आरम्भ 2 के नाम से पुकारते हो और घर का पता ही नहीं। यह अनूठा न्याय आपको किसने सिखाया? साधु हमेशा गुप्त तप और पारणा करते हैं पर आज तो अहिंसा के पैगम्बर तपस्या के आरम्भ में ही पत्रों द्वारा जाहिर करते हैं कि अमुक स्वामी जी ने इतने उपवास किये अमुक दिन पारणा होगा। इस सुअवसर पर सकुटुम्ब पधार कर शासन शोभा बढावें । इस पारणा पर सैंकड़ों हजारों भावुक एकत्र हो बड़ा आरम्भ समारम्भ कर स्वामी जी का माल लूट जाते हैं। इसका नाम धाम धूम है या भक्ति की ओट में आरम्भ आप है ? ऐसे अनेक कार्य हैं कि मूर्तिपूजकों से कई गुणा धाम धूम और आरम्भ करते हैं। जरा आंख खोल के देखो, आप पर भी जमाने ने कैसा प्रभाव डाला है?

प्र. - यदि मन्दिर-मूर्ति शास्त्र एवं इतिहास प्रमाणों से सिद्ध है, फिर स्थानकवासी खण्डन क्यों करते हैं? क्या इतने बड़े समुदाय में कोई आत्मार्थी नहीं है कि जो उत्सूत्र भाषण कर वज्रपाप का भागी बनता है ?

उ. - यह निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता है कि किसी समुदाय में आत्मार्थी है ही नहीं, पर इस सवाल का उत्तर आप ही दीजिये कि दया दान में धर्म व पुण्य, शास्त्र, इतिहास और प्रत्यक्ष प्रमाणों से सिद्ध है पर तेरह पन्थी लोग इसमें पाप होने की प्ररूपणा करते हैं क्या इतने बड़े समुदाय में कोई भी आत्मार्थी नहीं है कि खुले मैदान में उत्सूत्र प्ररूपते हैं जैसे आप तेरह पन्थियों को समझते हैं वैसे ही हम आपको समझते हैं। आपने मूर्ति नहीं मानी, तेरहपंथियों ने दया दान नहीं माना, पर उत्सूत्र रूपी पाप के

भागी दोनों समान ही हैं और स्थानकवासी व तेरहपंथियों में जो आत्मार्थी हैं वे शास्त्रों द्वारा सत्य धर्म का शोध करके असत्य का त्याग कर सत्य को स्वीकार कर ही लेते हैं ऐसे अनेक उदाहरण विद्यमान हैं कि स्थानकवासी तेरहपंथी सैंकड़ों साधु संवेगी दीक्षा धारण कर मूर्ति उपासक बन गये हैं।

प्र. - स्थानकवासी और तेरहपन्थियों को आपने समान कैसे कह दिया? कारण तेरह पंथियों का मत तो निर्दय एवं निकृष्ट है कि वे जीव बचाने में या उनके साधुओं के सिवाय किसी को भी दान देने में पाप बतलाते हैं। इनका मत तो वि. सं. 1815 में भीखम स्वामी ने निकाला है।

उ. - जैसे तेरहपन्थियों ने दया दान में पाप बतलाया वैसे स्थानकवासियों ने शास्त्रोक्त मूर्ति पूजा में पाप बतलाया, जैसे तेरहपन्थी समाज को वि. सम्वत् 1815 में भीखमजी ने निकाला वैसे ही स्थानकवासी मत को भी वि. सम्वत् 1708 में लवजीस्वामी ने निकाला । बतलाईये उत्सूत्र प्ररूपणा में स्थानकवासी और तेरहपंथियों में क्या असमानता है? हां! दया दान के विषय में हम और आप (स्थानकवासी) एक ही हैं।

प्र. - जब आप मूर्तिपूजा अनादि बतलाते हो तब दूसरे लोग उनका खण्डन क्यों करते हैं?

उ. - जो विद्वान् शास्त्रज्ञ हैं वे न तो मूर्ति का खण्डन करते थे और न मंडन करते हैं। बल्कि जिन मूर्ति पूजक आचार्यों ने बहुत से राजा, महाराजा व क्षत्रियादि अजैनों को जैन ओसवालादि बनाया, उनका महान उपकार समझते हैं और जो अल्पज्ञ या जैन शास्त्रों के अज्ञाता हैं वे अपनी नामवरी के लिये या भद्रिक जनता को अपने जाल में फंसाए रखने को यदि मूर्ति का खण्डन करते हैं तो उनका समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है? कुछ नहीं। उनके कहने मात्र से मूर्ति मानने वालों पर तो क्या पर नहीं मानने वालों पर भी असर नहीं होता है। वे अपने ग्राम के सिवाय बाहर तीर्थों पर जाते हैं। वहां निःशंक सेवा पूजा करते हैं वहाँ उनको बड़ा भारी आनन्द भी आता है। क्यों कि मंदिर व प्रतिमा तो प्रमुख आलंबन हैं।

फिर भी उन लोगों के खण्डन से हमको कोई नुकसान नहीं पर एक किस्म से लाभ ही हुआ है, ज्यों ज्यों वे कुयुक्तियों और असभ्यता पूर्वक

हल्के शब्दों में मूर्ति की निन्दा करते हैं त्यों 2 मूर्ति पूजकों की मूर्ति पर श्रद्धा दृढ़ एवं मजबूत होती जा रही है। इतना ही नहीं पर किसी जमाने में सदुपदेश के अभाव से जो भद्रिक लोग मूर्ति पूजा से दूर रहते थे वे भी अब समझ बूझ कर मूर्ति-उपासक बन रहे हैं जैसे-आचार्य विजयानन्दसूरि (आत्मारामजी) का जोधपुर में चतुर्मास हुआ था उस समय वहां मूर्ति पूजक केवल 100 घर ही थे पर आज 600-700 घर मूर्ति पूजकों के विद्यमान हैं। इसी प्रकार तीवरी गांव में एक घर था आज 50 घर हैं, पीपाड़ में नाम मात्र के मूर्ति पूजक समझे जाते थे आज बराबर का समुदाय बन गया, बिलाड़ा में एक घर था आज 40 घर हैं, खारिया में संवेगी साधुओं को पाव पानी भी नहीं मिलता था आज बराबरी का समुदाय दृष्टिगोचर हो रहा है। इसी भांति जैतारण का भी वर्तमान है। रूण में एक भी घर नहीं था, आज सब का सब ग्राम मूर्ति पूजक है, खजवाना में एक घर था आज 50 घरों में 25 घर मूर्ति पूजने वाले हैं। कुचेरा में 60 घर हैं और मेवाड़ मालवादि में भी छोटे-बड़े ग्रामों में मन्दिर मूर्तियों की सेवा पूजा करने वाले सर्वत्र पाये जाते हैं। जहाँ मन्दिर नहीं थे वहाँ मन्दिर बन गये, जहां मन्दिर जीर्ण हो गये थे वहां उन का जीर्णोद्धार हो गया। जो लोग जैन सामायिक प्रतिक्रमणादि विधि से सर्वथा अज्ञात थे वे भी अपनी विधि विधान से सब क्रिया करने में तत्पर हैं। मेहरबानों ! यह आपकी खण्डन प्रवृत्ति से ही जागृति हुई है।

आत्म-बन्धुओं ! जमाना बुद्धिवाद का है। जनता स्वयं अनुभव से समझने लग गई है कि हमारे पूर्वजों के बने बनाये मन्दिर हमारे कल्याण के कारण हैं वहां जाने पर परमेश्वर का नाम याद आता है। ध्यानस्थ शान्त मूर्ति देख प्रभु का स्मरण हो आता है जिससे हमारी चित्त वृत्ति निर्मल होती है। वहां कुछ द्रव्य चढ़ाने से पुण्य बढ़ता है पुण्य से सर्व प्रकार से सुखी हो सुख पूर्वक मोक्ष मार्ग साध सकते हैं। अब तो लोग अपने पैरों पर खड़े हैं। कई अज्ञसाधु अपने व्याख्यान में जैन मंदिर मूर्तियों के खण्डन विषयक तथा मन्दिर न जाने का उपदेश करते हैं तो समझदार गृहस्थ लोग कह उठते हैं कि "महाराज ! पहिले भैरू भवानी पीर पैगम्बर कि जहां मांस मदिरादि का बलिदान होता है त्याग करवाईये। आपको झुक-2 के वन्दन करने वालों

के गलों में रहे मिथ्यात्वी देवों के फूलों को छुड़वाईये। चोरी, व्यभिचार, विश्वासघात, धोखाबाजी आदि जो महान् कर्म बन्ध के हेतु हैं इनको छुड़वाइये? क्या पूर्वोक्त अनर्थ के मूल कार्यों से भी जैन मन्दिर में जाकर नमस्कार व नमोत्थुणं देने में अधिक पाप है कि आप पूर्वोक्त अधर्म कार्यों की उपेक्षा कर जैन मन्दिर मूर्तियां एवं तीर्थ यात्रा का त्याग करवाते हो। महात्मन्! जैन मन्दिर मूर्तियों की सेवा भक्ति छोड़ने से ही हम लोग अन्य देवी देवताओं को मानना व पूजना सीखे हैं। वरन नहीं तो गुजरातादि के जैन लोग सिवाय जैन मन्दिरों के कहीं भी नहीं जाते हैं। मूर्ति विरोधी उपदेशकों से आज कई अर्सों से मंदिर नहीं मानने का उपदेश मिलता है। पर हमारे पर इस उपदेश का थोड़ा भी असर नहीं होता है कारण हम जैन हैं हमारा जैन मन्दिरों के बिना काम नहीं चलता है। जैसे - जन्मे तो मन्दिर, ब्याहें तो मन्दिर, मरें तो मन्दिर, अट्ठाई आदि तप करें तो मन्दिर, आपद समय अधिष्ठायक देव को प्रसन्न करें तो मन्दिर, संघ पूजा करें तो मन्दिर, संघ पूजा देवें तो मन्दिर, दीपमालिकादि पर्व दिनों में मन्दिर, पर्युषणों में मन्दिर, तीर्थ यात्रा में मन्दिर, इत्यादि मन्दिर बिना हमारा काम नहीं चलता है। भला वैष्णवों के रेवाड़ी, मुसलमानों के ताजिया, तो क्या जैनों के खासाजी (वरघोड़ा) होना अनुचित है? नहीं अवश्य होना ही चाहिये। यदि जैनों के वरघोड़ा न हो तो बतलाईये हम और हमारे बाल-बच्चे किस महोत्सव में जावें? महाराज ! जिन लोगों ने जैनों को जैन मंदिर छुड़वाया है उन्होंने इतना मिथ्यात्व बढ़ाया है कि आज जैनियों के घरों में जितने व्रत वरतोलिये होते हैं वे सब मिथ्यात्वियों के ही हैं। हिन्दू देवी देवता को तो क्या? पर मुसलमानों के पीर पैगम्बर और मस्जिदादि की मान्यता पूजन से भी जैन बच नहीं सके हैं। क्या यह दुःख की बात नहीं है? क्या यह आपकी कृपा (!) का फल नहीं है? जहां संगठन और एकता का आन्दोलन हो रहा हो वहां आप हम को किस कोटि में रखना चाहते हैं?"

प्र. - भला ! मूर्ति नहीं मानने वाले तो अन्य देवी देवताओं के यहाँ जाते हैं, पर मूर्ति मानने वाले क्यों जाते हैं?

उ. - जैन लोग जैन देवी देवताओं के सिवाय किसी अन्य देव देवियों की मान्यता व पूजा नहीं करते थे। विक्रम सं. 1784 तक मारवाड़ के तमाम जैनों का एक ही मूर्ति मानने का धर्म था वहां तक जैन अपनी प्रतिज्ञा पर अडिग थे बाद मूर्ति मानने नहीं मानने का भेद पड़ा। कई अज्ञ लोगों ने जैन मंदिरों को छोड़ा तो उस हालत में वे अन्य देव देवियों को जाकर सिर झुकाने लगे। जाति व्यवहार एक (शामिल) होने से मूर्ति मानने वालों की लड़कियां, मूर्ति नहीं मानने वालों को ब्याही और मूर्ति नहीं मानने वालों की बेटियां मानने वालों को दी। इस हालत में जैनियों के घरों में आई हुई स्थानकवासियों की बेटियां अपने पीहर के संस्कारों के कारण अन्य देव देवियों को मानने लगीं इससे यह प्रवृत्ति उभय पक्ष में चल पड़ी। तथापि जो पक्के जैन हैं वे तो आज भी अपनी प्रतिज्ञा पर डटे हुये हैं जो अपवाद है वह भी स्थानकवासियों की प्रवृत्ति का ही फल है। तेरहपन्थी तो इन से भी नीचे गिरे हुए हैं।

प्र. - हमारे कई साधु तो कहते हैं कि मूर्ति नहीं मानना लोंकाशाह से चला है। तब कई कहते हैं कि हम तो महावीर की वंश परम्परा से चले आते हैं। इसके विषय में आपकी क्या मान्यता है?

उ. - जैन मूर्ति नहीं मानना यह लोकाशाह से चला यह वास्तव में ठीक है ही। इस मान्यता का हाल ही में स्था. मुनि शोभागचन्दजी ने जैन प्रकाश पत्र में -"धर्मप्राण लोकाशाह" नाम की लेखमाला में भली भांति सिद्ध कर दिया है- कि भगवान महावीर के बाद 2000 वर्षों से जैन मूर्ति नहीं मानने वाला सबसे पहले लोकाशाह ही हुआ। पर जो लोग कहते हैं कि हम महावीर की वंश परम्परा से चले आते हैं और कल्पित नामों की पट्टावलियां भी बनाई हैं, पर वे इस ऐतिहासिक युग में सब मिथ्या ठहरती हैं कारण महावीर बाद 200 वर्षो में केवली चतुर्दश पूर्वधर और श्रुतकेवली सैंकड़ों धर्म धुरंधर महान प्रभाविक आचार्य हुए वे सब मूर्ति उपासक ही थे यदि उनके समय में मूर्ति नहीं मानने वाले होते तो वे मूर्ति का विरोध करते। पर ऐसे साहित्य की गन्ध तक भी नहीं पाई जाती। जैसे दिगम्बर श्वेताम्बर से अलग हुए तो उसी समय उनके खण्डन-मण्डन के ग्रन्थ बन गये, पर

मूर्ति मानने नहीं मानने के विषय में वि. सं. 1531 के पहिले कोई भी चर्चा नहीं पाई जाती। इसी से यह कहना ठीक है कि जैन-मूर्ति के उत्थापक सबसे पहले लोकाशाह ही है। यदि वीर परम्परा से आने का कोई दावा करते हों तो लोकाशाह के पूर्व का प्रमाण बतलाना चाहिये कारण जैनाचार्यों ने हजारों लाखों मन्दिर मूर्तियों की प्रतिष्ठा की, हजारों लाखों ग्रन्थों की रचना की, अनेक राजा महाराजाओं को जैन धर्म में दीक्षित किया, ओसवालादि जातिएं बनाई इत्यादि। भला! एकाध प्रमाण तो वे लोग भी बतलावें कि लोकाशाह के पूर्व हमारे साधुओं ने अमुक ग्रन्थ बनाया या उपदेश देकर अमुक स्थानक बनाया या किसी अजैनी को जैन बनाया। कारण जिस समय जैनाचार्य पूर्वधर थे उस समय मूर्ति नहीं मानने वाले सब के सब अज्ञानी तो नहीं होंगे कि उन्होंने कोई ग्रन्थ व ढ़ाल चौपाई कविता छन्द का एक पद भी नहीं रचा? बन्धुओ ! अब जमाना यह नहीं हैं कि चार दीवारी के बीच भोली भाली बहिनों के सामने कल्पित बात कर आप अपने को सच्चा समझें। आज जमाना तो अपनी मान्यता को प्रमाणिक प्रमाणों द्वारा मैदान में सत्य बतलाने का है। क्या कोई व्यक्ति यह बतला सकता है कि लोकाशाह पूर्व इस संसार में जैन मूर्ति नहीं मानने वाला कोई व्यक्ति था? कदापि नहीं !

प्र. - क्या 32 सूत्रों में मूर्तिपूजा करने का उल्लेख है?

उ. - यह तो हमने पहले से ही कह दिया था कि ऐसा कोई सूत्र नहीं है कि जिसमें मूर्ति का उल्लेख न हो। कदाचित् आपको किसी ने भ्रम में डाल दिया हो कि 32 सूत्रों में मूर्ति का बयान नहीं है, तो सुन लीजिये :-

(1) श्री आचारांग सूत्र दूसरा श्रुतस्कन्ध पन्द्रहवें अध्ययन में सम्यकत्व की प्रशस्त भावना में शत्रुंजय गिरनारादि तीर्थों की यात्रा करना लिखा है (भद्रबाहु स्वामीकृत निर्युक्ति)।

(2) श्री सूत्रकृतांग सूत्र दूसरा श्रुतस्कन्ध छठे अध्ययन में अभयकुमार ने आर्द्रकुमार के लिये जिनप्रतिमा भेजी, जिसके दर्शन से उसको जाति स्मरण ज्ञान हुआ। (शे. टी)

(3) श्री स्थानायांग सूत्र चतुर्थ स्थानक में नन्दीश्वर द्वीप में 52 मन्दिरों का अधिकार है।

(4) श्री समवायांग सूत्र के सतरहवें समवाय में जंघाचारण विद्याचरण मुनियों के यात्रा वर्णन का उल्लेख है।

(5) श्री भगवती सूत्र शतक 3 उ. 1 के चमरेन्द्र के अधिकार में मूर्ति का शरण कहा है।

(6) श्रीं ज्ञाता सूत्र अध्याय 8 में श्री अरिहन्तों की भक्ति करने से तीर्थंकर गोत्र बन्धता है तथा अध्याय 16 में द्रौपदी महासती ने 17 भेद से पूजा की है।

(7) श्री उपासक दशांग सूत्र आनन्दाधिकार में जैन मूर्ति का उल्लेख है।

(8) श्री अन्तगड़ और अनुत्तरोववाई सूत्र में द्वारिकादि नगरियों के अधिकार में उत्पातिक सूत्र सदृश जैन मन्दिरों का उल्लेख है।

(10) प्रश्न व्याकरण सूत्र तीसरे संवरद्वार में जिन प्रतिमा की वैयावच्च (रक्षण) कर्म निर्जरा के हेतु करना बतलाया है।

(11) विपाक सूत्र में सुबाहु आदि ने जिन प्रतिमा पूजी है।

(12) उत्पातिक सूत्र में मुहल्ले 2 जैन मंदिर में तथा अंबड़ श्रावक ने प्रतिमा का वन्दन करने की प्रतिज्ञा ली थी।

(13) राजप्रश्नीय सूत्र में सूरियाभ देव ने सत्रह प्रकार से पूजा की है।

(14) जीवाभिगम सूत्र में विजयदेव ने जिन प्रतिमा पूजी है।

(15) प्रज्ञापना सूत्र में ठवणा सच कहा है।

(16) जम्बुद्वीप प्रज्ञपति सूत्र में 269 शाश्वते पर्वतों पर 91 मन्दिर तथा जम्बुदेव ने प्रतिमा पूजी। आदीश्वर के निर्वाण के बाद उनकी चीता पर इन्द्र महाराज ने रत्नों के स्थूभ बनाये।

(17) चन्द्र प्रज्ञपति सूत्र में चन्द्र विमान में जिन प्रतिमा।

(18) सूर्य प्रज्ञपति सूत्र में सूर्य विमान में जिन प्रतिमा।

(19.23) पांच निरयावलिका सूत्र नगरादि अधिकार में जिन प्रतिमा।

(24) व्यवहार सूत्र उद्देशा पहला आलोचनाधिकार में जिन प्रतिमा।

(25) दशाश्रुत स्कन्ध सूत्र, राजगृह नगराधिकारे जिन प्रतिमा।

(26) निशीथ सूत्र जिन प्रतिमा के सामने प्रायश्चित्त लेना कहा।

(27) बृहत्कल्प सूत्र नगरियों के अधिकार में जिन चैत्य हैं।

(28) उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन 10 अष्टापद के मन्दिर, अध्याय 18 वां उदाइराजा की रानी प्रभावती के गृह मन्दिर का अधिकार, अध्ययन 29 में चैत्य वन्दन का फल यावत् मोक्ष बतलाया है।

(29) दशवैकालिक सूत्र जिन प्रतिमा के दर्शन से शय्यंभव भट्टको प्रतिबोध हुआ।

(30) नन्दीसूत्र में विशाला नगरी में जिन चैत्य को महाप्रभाविक कहा है।

(31) अनुयोगद्वार सूत्र में चार निक्षेप का अधिकार में स्थापना निक्षेप में अरिहन्तों की मूर्ति-अरिहन्तों की स्थापना कही है।

(32) आवश्यक सूत्र में अरिहन्त चेइआणं तथा "कित्तिय वंदिय महिया" जिसमें कित्तिय वंदिय को भाव पूजा और महिया को द्रव्य पूजा कहा है।

इन 32 सूत्रों के अलावा भी सूत्रों में तथा पूर्वधराचार्यों के ग्रन्थों में जिन- प्रतिमा का विस्तृत वर्णन है। पर आप लोग 32 सूत्र ही मानते हैं इसलिये यहाँ 32 सूत्रों में ही जिन प्रतिमा का संक्षिप्त से उल्लेख किया है।

प्र. - इसमें कई सूत्रों के आपने जो नाम लिखें हैं वहां मूर्तिपूजा मूल पाठ में नहीं पर टीका नियुक्ति में है, वास्ते हम लोग नहीं मानते हैं?

उ. - यह ही तो आपकी अज्ञानता है कि स्थविरों के रचे उपांगादि सूत्रों को मानना और पूर्वधरों की रची निर्युक्ति टीका नहीं मानना। भला पहले दूसरे सूत्रों के अलावा 30 सूत्रों के मूल पाठ में मूर्तिपूजा का उल्लेख है, वे तो आप को मान्य हैं। यदि है तो उसको तो आप मान लीजिये जिससे आपका कल्याण हो।

प्र. - पांच पदों में मूर्ति किस पद में है?

उ. - अरिहन्तों को मूर्ति अरिहन्त पद में और सिद्धों की मूर्ति सिद्ध पद में है।

प्र.- चार शरणों में मूर्ति किस शरण में है?

उ. - मूर्ति अरिहन्त और सिद्धों के शरणा में है।

प्र. - सूत्रों में अरिहन्त का शरणा कहा है पर मूर्ति का शरणा नहीं कहा है?

उ. - कहा तो है पर आपको नहीं दिखता है। भगवती सूत्र श. 3 उ. 1 में अरिहन्त, अरिहन्तों की मूर्ति और भावितात्मा साधु का शरण लेना कहा है और आशातना के अधिकार में पुनः अरिहन्त और अनगार एवं दो ही कही इससे भी सिद्ध हुआ कि जो अहिन्तों की मूर्ति की आशातना है वह ही अरिहन्तों के मूर्ति की आशातना है। आप भी भैरू की स्थापना को पीठ देकर नहीं बैठते हो कारण उसमें भैंरू की आशातना समझते हो।

प्र. - भगवान ने तो दान शील तप एवं भाव यह चार प्रकार का धर्म बतलाया है। मूर्ति पूजा में कौनसा धर्म है?

उ. - मूर्तिपूजा में पूर्वोक्त चारों प्रकार का धर्म है। जैसे-

(1) पूजा में अक्षतादि द्रव्य अर्पण किये जाते हैं, यह शुभक्षेत्र में दान हुआ।

(2) पूजा के समय इन्द्रियों का दमन, विषय विकार की शान्ति, यह शीलधर्म।

(3) पूजा में नवकारसी पौरसी के प्रत्याख्यान, यह तपधर्म।

(4) पूजा में वीतराग देव की भावना, गुण-स्मरण, यह भावधर्म। यों पूजा में चारों प्रकार का धर्म होता है।

प्र. - पूजा में तो हम धमाधम देखते हैं?

उ. - कोई अज्ञानी सामायिक करके या दया पाल के धमाधम करता हो तो क्या सामायिक व दया दोषित और त्यागने योग्य है या धमाधम करने वाले का अज्ञान है? दया पालने में एकाध व्यक्ति को धमाधम करता देख शुद्ध भावों से दया पालने वालों को भी दोषित ठहराना क्या अन्याय नहीं है?

प्र. - तप संयम से कर्मों का क्षय होना बतलाया है पर मूर्ति से कौन से कर्मों का क्षय होता है वहां तो उल्टे कर्म बन्धन हैं?

उ. - मूर्ति पूजा तप संयम से रहित नहीं है जैसे तप संयम से कर्मों का क्षय होता है वैसे ही मूर्ति पूजा से भी कर्मों का नाश होता है। जरा पक्षपात के चश्मे उतार कर देखिये - मूर्ति पूजा में किस किस क्रिया से कौनसे कौनसे कर्मों का क्षय होता है।

(1) चैत्यवन्दनादि भगवान के गुण स्तुति करने से ज्ञानाऽऽवरणीय कर्म का क्षय।

(2) भगवान के दर्शन करने से दर्शनावरणीय कर्म का नाश।

(3) प्राण भूत जीव सत्व की करुणा से असातावेदनीय का क्षय।

(4) अरिहन्तों के गुणों का या सिद्धों के गुणों का स्मरण करने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति और मोहनीय कर्म का क्षय होता है।

(5) प्रभु पूजा में तल्लीन और शुभाऽध्यवसाय से उसी भव में मोक्षप्राप्ति होती है। यदि ऐसा न हो तो शुभ गति का आयुष्य बन्ध कर क्रमशः (भवान्तर में) मोक्ष की प्राप्ति अवश्य होती है।

(6) मूर्ति पूजा में अरिहन्तादि का नाम लेने से अशुभ नाम कर्म का नाश।

(7) अरिहन्तादि का वन्दन या पूजा करने से नीच गौत्र कर्म का क्षय।

(8) मूर्ति पूजा से शक्ति का सदुपयोग और द्रव्यादि का अर्पण करना अन्तराय कर्म को दूर कर देता है।

महेरबान ! परमात्मा की पूजा करने से क्रमशः आठ कर्मों की देश व सर्व से निर्ज्जरा होती है। मूर्ति पूजा का आनन्द तो जो लोग पूर्ण भाव-भक्ति और श्रद्धा पूर्वक करते हैं वे ही जानते हैं। जिनके सामने आज 500 वर्षों से विरोध चल रहा है, अनेक कुयुक्तिआं लगाई जा रही हैं पर जिनकी आत्मा जिन पूजा में रंग गयी है उनका एक प्रदेश भी चलायमान नहीं होता है। समझे न ।

प्र. - यह समझ में नहीं आता है कि अष्टमी चतुर्दशी जैसी पर्व तिथियों से श्रावक लोग हरी वनस्पति खाने का त्याग करते हैं। जब भगवान को वे फल फूल कैसे चढ़ा सकते हैं?

उ. - यह तो आपके समझ में आ सकता है कि अष्टमी चतुर्दशी के उपवास (खाने का त्याग) करने वाले के घर पर आये हुए साधुओं को भिक्षा दे सकते हैं और उनको पुण्य भी होता है। जब आप खाने का त्याग करने पर भी दूसरों को खिलाने में पुण्य समझते हैं तो श्रावकों को पुष्पादि से पूजा करने में लाभ क्यों नहीं है ?

प्र. - साधुओं को तो फासुक अचित्त आहार देने में पुण्य है, पर भगवान को तो पुष्पादि सचित्त पदार्थ चढ़ाया जाता है और उसमें हिंसा अवश्य होती है?

उ. - यह तो आपके दिल में एक किस्म का भ्रम डाल दिया है, जहाँ तहां हिंसा का पाठ पढ़ा दिया है, पर इसका मतलब आपको नहीं समझाया है। हिंसा तीन प्रकार की होती है- (1) अनुबन्ध हिंसा (2) हेतु हिंसा (3) स्वरूप हिंसा। इसका मतलब यह है कि हिंसा नहीं करने पर भी मिथ्यात्व सेवन करना उत्सूत्र भाषण करना इत्यादि वीतरागाज्ञा विराधक जैसे जमाली प्रमुख, यह अनुबन्ध हिंसा है। (2) गृहस्थ लोग गृह कार्य में हिंसा करते है, वह हेतु हिंसा है। (3) जिनाज्ञा सहित धर्म क्रिया करने में जो हिंसा होती है, उसे स्वरूप हिंसा कहते हैं। जैसे नदी के पानी में एक साध्वी बह रही है। साधु उसे देख के पानी के अन्दर जाकर उस साध्वी को निकाल लावे इसमें यद्यपि अनन्त जीवों की हिंसा होती है पर वह स्वरूप हिंसा होने से उसका फल कटु नहीं पर शुभ ही होता है-

इसी प्रकार गुरु वन्दन, देव पूजा, स्वधर्मी भाईयों की भक्ति आदि धर्म कृत्य करते समय छः काया में से किसी भी जीवों की विराधना हो उसको स्वरूप हिंसा कहते हैं।

प्र. - पानी में से साध्वी को निकालना या गुरुवंदन करने में तो भगवान की आज्ञा है।

उ. - तो मूर्ति पूजा करना कौनसी हमारे घर की बात है, वहां भी तो भगवान की ही आज्ञा है।

प्र. - भगवान ने कब कहा कि तुम हमारा पूजन करना?

साधुओं को वन्दन करना तो सूत्रों में कहा है।

बतलाईये किस सूत्र में कहा है कि मूर्ति पूजा से मोक्ष होता है?

उ. - आप भी बतलाइये कि साधुओं को वन्दन करने से मोक्ष की प्राप्ति का किस सूत्र में प्रतिपादन किया है ?

प्र. - उववाई सूत्र में साधुओं को वन्दना करने का फल यावत् मोक्ष बतलाया है। जैसे कि-

(1) हियाए - हित का कारण।

(2) सुहाए -सुख का कारण।

(3) खमाए - कल्याण का कारण।

(4) निस्सेसाए - मोक्ष प्राप्ति का कारण।

(5) अनुगमिताए - भवोभव में साथ चलने वाला।

साधु वन्दन का फल तो मोक्ष बतलाया है, पर मूर्ति पूजा का फल किसी सूत्र में मोक्ष का कारण बतलाया हो तो आप मूल सूत्र का पाठ बतलावें ।

उ. - सूत्र पाठ तो हम बतला ही देंगे पर जरा हृदय में विचार तो करें कि साधु को वन्दन करना मोक्ष का कारण है। तब परमेश्वर की मूर्ति पूजा में तो नमोत्थुणं आदि पाठों से तीर्थंकरों को वन्दन किया जाता है क्या साधुओं को वन्दन जितना भी लाभ तीर्थङ्करों के वन्दन पूजन में नहीं है ? धन्य है आपकी बुद्धि को !

प्र. - हो या न हो यदि सूत्रों में पाठ हो तो बतलाईये?

उ. - सूत्र श्री रायप्पसेणीजी में मूर्ति पूजा का फल इस प्रकार बतलाया है कि

(1) हियाए - हित का कारण।

(2) सुहाए - सुख का कारण।

(3) खमाए - कल्याण का कारण।

(4) निस्सेसाए - मोक्ष का कारण।

(5) अनुगमिताए - भवोभव साथ में।

इसी प्रकार आचारांग सूत्र में संयम पालने का फल भी पूर्वोक्त पांचों पाठ से यावत् मोक्ष प्राप्त होना बतलाया है। इस पर साधारण बुद्धि वाला भी विचार कर सकता है कि वन्दन पूजन और संयम का फल यावत् मोक्ष होना सूत्रों में बतलाया है, जिसमें वन्दन और संयम को मानना और पूजा को नहीं मानना सिवाय अभिनिवेश के और क्या हो सकता है?

प्र. - यह तो केवल फल बतलाया है, पर किसी श्रावक ने प्रतिमा पूजी हो तो 32 सूत्रों का मूल पाठ बतलाओ।

उ. - ज्ञाता सूत्र के 16वें अध्ययन में महासती द्रौपदी ने सत्तरह प्रकार से पूजा की थी ऐसा मूल पाठ है।

प्र. - द्रौपदी की पूजा को हम प्रमाणिक नहीं मानते हैं।

उ. - क्या कारण?

प्र. - द्रौपदी उस समय मिथ्यात्वी अवस्था में थी।

उ. - खैर, इस चर्चा को रहने दीजिये। परन्तु द्रौपदी को आज करीब 87000 वर्ष हुए हैं। द्रौपदी के समय में जैन मन्दिर और जिन प्रतिमा तो विद्यमान थीं और वे मन्दिर मूर्तिआं जैनियों ने अपने आत्म कल्याणार्थ ही बनाई थी। इससे सिद्ध हुआ कि जैनों में मूर्ति का मानना प्राचीन समय से ही चला आया है । द्रौपदी के अधिकार में सुरियाभ देव का उदाहरण दिया है और राज प्रश्नीय सूत्र में सुरियाभदेव ने विस्तारपूर्वक पूजा की है।

प्र. - सुरियाभ तो देवता था, उसने जीत आचार से प्रतिमा पूजी है, उसमें हम धर्म नहीं समझते हैं?

उ. - जिसमें केवली-गणधर धर्म समझे और आप कहते हो कि हम धर्म नहीं समझे तो आप पर आधार ही क्या? कि आप धर्म नहीं समझे इसमें कोई भी धर्म नहीं समझे। पर मैं पूछता हूँ कि सुरियाभ देव में गुण स्थान कौनसा है?

उ. - सम्यग्दृष्टि देवताओं में चौथा गुण स्थान है।

प्र. - केवली में कौनसा गुणस्थान?

उ. - तेरहवां चौदहवां गुणस्थान।

प्र. - चौथा गुणस्थान और तेरहवां गुणस्थान की श्रद्धा एक है या भिन्न -भिन्न है ?

उ. - श्रद्धा तो एक ही है।

प्र. - जब चौथा गुणस्थान वाला प्रभु पूजा कर धर्म माने तब तेरहवां गुणस्थान वाला भी धर्म माने, फिर आप कहते हो कि हम नहीं मानते। क्या यह उत्सूत्र और अधर्म नहीं है? हम पूछते हैं कि इन्द्रों ने भगवान का मेरु पर्वत पर अभिषेक महोत्सव किया, हजारों कलश पानी ढ़ोला, सुरियाभादि देवताओं न पूजा की, इससे उसके भव भ्रमण बढ़ा या कम हुआ? पुण्य हुआ या पाप हुआ? यदि भव भ्रमण बढा और पाप हुआ हो तो वे सब

एकावतारी हुए हैं वे भव और पाप कहां पर भोग लिया? यदि भव घटिया एवं पुण्य बढ़ा हो तो आपका कहना मिथ्या हुआ।

प्र. - यह तो हम नहीं कह सकते कि भगवान का महोत्सवादि करने से भव भ्रमण बढ़ता है।

उ. - फिर तो निःशंक सिद्ध हुआ कि प्रभु पूजा पक्षालादि स्नात्र करने से भव घटते हैं और क्रमशः मोक्ष की प्राप्ति होती है।

प्र. - यदि धामधूम करने में धर्म होता तो सूरियाभ देव ने नाटक करने की भगवान से आज्ञा मांगी उस समय आज्ञा न देकर भगवान मौन क्यों रहे?

उ. - नाटक करने में यदि पाप ही होता हो भगवान ने मनाई क्यों नहीं की? इससे यह निश्चय होता है कि आज्ञा नहीं दी यह तो भाषा समिति का रक्षण है। पर इन्कार भी तो नहीं किया। कारण इससे देवताओं की भक्ति का भंग भी था। वास्तव में सूत्र में भक्तिपूर्वक का पाठ होने से इसमें भक्ति धर्म का एक अंग है, इसलिये भगवान ने मौन रखा, पर मौन स्वीकृति ही समझना चाहिये। यह तो आप सोचिये कि चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीवों के-व्रत नियम तप संयम का तो उदय है नहीं और वे तीर्थंकर नाम कर्मोपार्जन कर सकते हैं तो इसका कारण सिवाय परमेश्वर की भक्ति के और क्या हो सकता है?

प्र. - उपासक दशाङ्ग सूत्र में आनन्द काम -देव के व्रतों का अधिकार है पर मूर्ति का पूजन कहीं भी नहीं लिखा है।

उ. - लिखा तो है परन्तु आपको दिखता नहीं। आनन्द ने भगवान वीर के सामने प्रतिज्ञा की है कि आज पीछे मैं अन्यतीर्थिओं और उनकी प्रतिमा तथा जिस प्रतिमा को अन्यतीर्थी ने ग्रहण कर अपना देव मान लिया हो तो उस प्रतिमा को भी मैं नमस्कार नहीं करूंगा। इससे सिद्ध है कि आनंदादि श्रावकों ने जिन प्रतिमा का वन्दन, पूजन मोक्ष का कारण समझ के ही किया था। और औत्पातिक सूत्र में अंबड़ श्रावक जोर देकर कहता है कि आज पीछे मुझे अरिहन्त और अरिहन्तों की प्रतिमा का वन्दन करना ही कल्पता है।

प्र. - ज्ञाता सूत्र में 20 बीस बोलों का सेवन करने से, तीर्थङ्कर गोत्र

बांधना बतलाया है, पर मूर्ति पूजा से तीर्थंकर गोत्रबंध नहीं कहा है।

उ. - कहा तो है पर आपको समझाने वाला कोई नहीं मिला। ज्ञाता सूत्र के 20 बोलों में पहिला बोल अरिहन्तों की भक्ति और दूसरा बोल सिद्धों की भक्ति करने से तीर्थंकर गोत्रोपार्जन करना स्पष्ट लिखा है, और यही भक्ति मन्दिरों में मूर्तियों द्वारा की जाती है। महाराजा श्रेणिक अरिहन्तों की भक्ति के निमित्त हमेशा 108 सोने के जौ (यव) बनाके मूर्ति के सामने स्वस्तिक किया करता था, और भक्ति में तल्लीन रहने के कारण ही उसने तीर्थङ्कर गोत्र बांधा था। कारण दूसरे तप, संयम, व्रत तो उदय ही नहीं हुए थे, यदि कोई कहे कि श्रेणिक ने जीव दया पाली उससे तीर्थङ्कर गोत्र बंधा, पर यह बात गलत है, कारण जीव दया से साता वेदनीयकर्म का बन्ध होना भगवती सूत्र श. 8 उ. 5 में बतलाया है, इसलिए श्रेणिक ने अरिहन्तों एवं सिद्धों की भक्ति करके ही तीर्थङ्कर गोत्रोपार्जन किया था।

प्र. - मूर्ति पूजा में हिंसा होती है, उसे आप धर्म कर्म मानते हो?

उ. - सिद्धांतों में मूर्तिपूजा की जो विधि बताई है, उसी विधि से भक्त जन पूजा करते हैं। इसमें जल चन्दनादि द्रव्यों को देख के ही आप हिंसा 2 की रट लगाते हो तो यह आपकी भूल है। यह तो पांचवें गुणस्थान की क्रिया है, पर छट्ठे से तेरहवें गुणस्थान तक भी ऐसी कोई क्रिया नहीं है कि जिसमें जीव हिंसा न हो। खुद केवली हलन चलन की क्रिया करते हैं, उसमें भी तो जीव-हिंसा अवश्य होती है, इसी कारण से उनके दो समय का वेदनीयकर्म का बंधन होता है। यदि साधु, श्रावक की क्रिया में हिंसा होती ही नहीं तो वे प्रति समय सात कर्म क्यों बाँधते हैं? इसका तो जरा विचार करो। जैसे पूजा की विधि में आप हिंसा मानते हो तो आपके गुरु वंदन में भी हिंसा क्यों नहीं मानते हो? उसमें भी तो असंख्य वायुकाया के जीव मरते हैं। साधु व्याख्यान देते समय हाथ ऊंचा नीचा करे, उसमें भी अनगिनित वायुकाया के जीव मरते हैं। इसी तरह आंख का एक वाल चलता है तो उस में भी अनक वायुकाया के जीव मरते हैं। यदि आप यह कहो कि वंदना करने का व्याख्यान देने का परिणाम शुभ होता है, इससे उस हिंसा का फल नहीं होता, तो हमारी मूर्ति-पूजा से फिर

कौन-सा अशुभ परिणाम का फल होता है। जो सारा पाप इसी के सिर मढ़ा जाय? महाशय! जरा समदर्शी बनो ताकि हमारे आपके परस्पर नाहक का कोई मत-भेद न रहे।

प्र. - पूजा यत्नों से नहीं की जाती है।

उ. - इस बात को हम स्वीकार करते हैं कि गुरु वन्दनादि प्रत्येक क्रिया यत्नों से व सोपयोग करनी चाहिये। पर अयत्ना देख उसे एकदम छोड़ ही नहीं देना चाहिये। जैसे- श्रावक को सामायिक 32 दोष वर्ज के करना कहा है। यदि किसी ने 30 दोष टाले, किसी ने 20 दोष टाले, इसका अर्थ यह कदापि नहीं होता कि एक दोष न टालने से सामायिक को ही छोड़ देना चाहिए। इसी प्रकार कई देश, काल ऐसे ही हैं कि अनिच्छता जानबूझ के दोष का सेवन करना पड़ता है। जैसे साधुओं को पेशाब, टट्टी, ग्राम नगर में नहीं परठना, ऐसा शास्त्रों में आदेश है, पर वे देशकाल को देख, जानबूझ कर इस दोष का सेवन करते हैं। ऐसे 2 एक नहीं पर अनेकों उदाहरण विद्यमान हैं।

प्र. - बस अब मैं आपको विशेष कष्ट देना नहीं चाहता हूँ। कारण मैं आपके दो प्रश्नों के उत्तर में ही सब रहस्य समझ गया, पर यदि कोई पूछ ले तो उसको जवाब देने के लिये मैंने आपसे इतने प्रश्न किये हैं। आपने निष्पक्ष होकर न्याय पूर्वक जो उत्तर दिया उससे मेरी अन्तरात्मा को अत्यधिक शान्ति मिली है। यह बात सत्य है कि वीतराग दशा की मूर्ति की उपासना करने से आत्मा का क्रमशः विकास होता है। मैं भी आज से मूर्ति का उपासक हूँ और मूर्ति पूजा में मेरी दृढ श्रद्धा है आपको जो कष्ट दिया, तदर्थ क्षमा चाहता हूँ।

उपसंहार

उत्तर - मूर्तिपूजा में दृढ श्रद्धालु होना, और उसका उपासक बनना यह आपकी कर्त्तव्यशीलता, भवभय-भीरुता और सत्य को स्वीकार करने की सद्बुद्धि है। एवं यह आपका जनोचित कार्य प्रशंसनीय भी है। फिर भी आपको जरा यह बतला देना चाहता हूँ कि, जैन मन्दिर मानने में जैनियों को कितना लाभ है? इसे भी एकाग्र से समझें।

(1) गृहस्थों को अनर्थ से द्रव्य प्राप्त होता है। और वह अनर्थ में ही व्यय होता है, अर्थात् आय व्यय दोनों कर्म बन्धन के कारण हैं। इस हालत में वह द्रव्य यदि मन्दिर बनाने में लगाया जाए तो सुख एवं कल्याण का कारण होता है। क्योंकि एक मनुष्य के बनाये हुए मन्दिर से हजारों लाखों मनुष्य कल्याण प्राप्त करते हैं। जैसे आबू आदि के मन्दिरों में दर्शन का लाभ अनेक विदेशी तक भी लेते हैं।

(2) हमेशा मन्दिर जाकर पूजा करने वाला अन्याय, पाप और अधिकरण करने से डरता रहता है, कारण उसके संस्कार ही ऐसे हो जाते हैं।

(3) मन्दिर जाने का नियम है, तो वह मनुष्य प्रतिदिन थोड़ा बहुत समय निकाल वहां जा अवश्य प्रभु के गुणों का गान करता है और स्वान्तःकरण को शुद्ध बनाता है।

(4) हमेशा मन्दिर जाने वाले के घर से थोड़ा बहुत द्रव्य शुभ क्षेत्र में अवश्य लगता है, जिससे शुभ कर्मों का संचय होता है।

(5) मन्दिर जाकर पूजा करने वालों का चित्त निर्मल और शरीर आरोग्य रहता है, इससे उनके तप, तेज और प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है।

(6) मन्दिर की भावना होगी तो वे नये 2 तीर्थों के दर्शन और यात्रा करने को भी अवश्य जायेंगे। जिस दिन तीर्थ यात्रा निमित्त घर से रवाना होते हैं उस दिन से घर का प्रपञ्च छूट जाता है। और ब्रह्मचर्य व्रत पालन के साथ ही साथ, यथाशक्ति तपश्चर्या या दान आदि भी करते हैं, साथ ही परम निवृत्ति प्राप्त कर ध्यान भी करते हैं।

(7) आज मुट्ठी भर जैन जाति की भारत या भारत के बाहर जो कुछ प्रतिष्ठा शेष है वह इसके विशालकाय, समृद्धि-सम्पन्न मंदिर एवं पूर्वाचार्य प्रणीत ग्रन्थों से ही है।

(8) हमारे पूर्वजों का इतिहास और गौरव इन मन्दिरों से ही हमें मालूम होता है।

(9) यदि किसी प्रान्त में कोई उपदेशक नहीं पहुँच सके, वहां भी केवल मंदिरों के रहने से धर्म अवशेष रह सकता है, नितान्त नष्ट नहीं होता।

(10) आत्म-कल्याण में मंदिर मूर्ति मुख्य साधन हैं, यथारुचि सेवा पूजा करना जैनों का कर्त्तव्य है चाहे द्रव्य पूजा करें या भाव पूजा पर पूज्य पुरुषों की पूजा अवश्य करें।

(11) जहां तक जैन-समाज, मन्दिर मूर्तियों का भाव भक्ति से उपासक था वहां तक, आपस में प्रेम, स्नेह, ऐक्यता, संघ सत्ता और जाति संगठन तथा मान, प्रतिष्ठा,तन, मन एवं धन से समृद्ध था।

(12) आज एक पक्ष जो जिन तीर्थङ्करों का सायं प्रातः नाम लेता है, उन्हीं तीर्थंकरों की मूर्तियों की भरपेट निन्दा करता है, और दूसरा पक्ष उनके मूर्ति की पूजा करता है। परन्तु पूर्ण आशातना नहीं टालने से आज समाज अधः स्थिति को पहुँच रहा है।

(13) आज इतिहास में जो जैनियों को गौरव उपलब्ध होता है उसका एक मात्र कारण उनके मन्दिरों का निर्माण एवं उदारता ही है। मन्दिरों को मोक्ष का साधन समझ असंख्य द्रव्य इस कार्य में व्यय कर भारत के रमणीय पहाड़ों और विशाल दुर्गों में जिन मन्दिरों की प्रतिष्ठा कराई है।

(14) जैन मन्दिर मूर्तियों की सेवा पूजा करने वाले बीमारावस्था में यदि मन्दिर नहीं भी जा सकते तो भी उनका परिणाम यह ही रहेगा कि आज मैं भगवान का दर्शन नहीं कर सका यदि ऐसी हालत में उसका देहान्त भी हो जाए तो उसकी गति अवश्य शुभ होती है। देखा मन्दिरों का प्रभाव !

अन्त में श्रीमती शासन देवी से हमारी यही नम्र प्रार्थना है कि वे हम सबको सद् बुद्धि दें, जिससे पूर्व समय के तुल्य ही हम सब संगठित हो, परम प्रेम के साथ शासन सेवा करने में भाग्यशाली बनें।

ओसवाल जाति का संक्षिप्त इतिहास

वीर सं. 70 में ओसीया के नागरिकों को मांस, शराब आदि छुड़वाकर आचार्यश्री रत्नप्रभसूरीश्वरजी ने ओसवाल वंश की स्थापना की। 345000 लोगों को नवकार महामंत्र की शिक्षा दीक्षा देकर जैन बनाया। उसी वर्ष उन ओसवालों ने जैन मंदिर का ओसीया में निर्माण करवाया था। इसलिए सभी ओसवाल मंदिरमार्गी हैं।-पार्श्वनाथ परंपरा के इतिहास में से साभार

श्री शान्तिनाथ भगवान का स्तवन

शान्ति जिनेश्वर साहेब वन्दो, अनुभव रसनो कन्दो रे।
मुखने मटके लोचन लटके, मोह्या सुरनर वृन्दो रे, शांति. ॥ 1॥
आम्बे मंजरी कोयल टहुके, जलद घटा जिम मोरा रे ।
तेम जिनप्रतिमा निरखी हरखुं, वलि जेम चंद चकोरा रे । शान्ति. ॥ 2॥
जिन पडिमा श्री जिनवर सरखी, सूत्र घणा छे साखी रे।
सुरनर मुनिवर वन्दन पूजा, करता शिव अभिलाषी रे। शान्ति.॥ 3॥
राय पसेणी मां पडिमा पूजी, सूर्याभ समकित धारी रे ।
जीवाभिगमे पडिमा पूजी, विजयदेव अधिकारी रे। शान्ति. ॥ 4॥
जिनवर बिंब विना नवि वन्दुं, आणंदजी इम बोले रे।
सातमे अंगे समकित मूले, अवर नहीं तस तोले रे। शान्ति. ॥ 5॥
ज्ञाता सूत्र मां द्रौपदी पूजा, करती शिव सुख मांगे रे।
राय सिद्धारथ पडिमा पूजी, कल्पसूत्र मां रागे रे। शान्ति. ॥ 6॥
विद्या चारण मुनिवर वन्दी, पडिमा पंचम अंगे रे ।
जंघाचारण वीशमे शतके, जिन पडिमा मन रंगे रे। शान्ति.॥ 7॥
आर्य सुहस्ति सूरि उपदेशे, साचो सम्प्रति राय रे।
सवा क्रोड जिन बिम्ब भराव्या, धन धन तेहनी माय रे। शान्ति.॥ 8॥
मोकली प्रतिमा अभय कुमारे, देखी आर्द्रकुमार रे।
जाति स्मरणे समकित पामी, वरिया शिव वधू सार रे। शान्ति. ॥ 9॥
इत्यादि बहुपाठ कह्या छे, सूत्र मांहे सुखकारी रे।
सूत्र तणो एक वर्ण उत्थापे, ते कह्या बहुत संसारी रे। शान्ति.॥ 10॥
ते माटे जिन आणाधारी, कुमति कदाग्रह वारी रे।
भक्ति तणा फल उत्तराध्ययने, बोधि बीज सुखकारी रे॥ शान्ति. ॥11॥
एक भवे दोय पदवी पाम्या, सोलमां श्री जिनराया रे।
मुज मन मंदिरीये पधराव्युं, धवल मंगल गवराया रे। शान्ति. ॥ 12॥
जिन उत्तम पद रूप अनुपम, कीर्त्ति कमला नी शाला रे।
'जीव विजय' कहे प्रभुजीनी भक्ति, करता मंगल माला रे । शान्ति. ॥13॥

***

सभी सयाने एक मत

- भगवती सूत्र के प्रारम्भ में "णमो बंभीए लिवीए" ऐसा कहकर सुधर्मास्वामी गणधर ने श्रुतज्ञान की स्थापना (मूर्ति) को नमस्कार किया है।
- केलवा की अंधारी ओरी में तेरापंथी आचार्य भारमलजी स्वामी की काष्ठ की खड़ी मूर्ति है।
- तुलसी साधना शिखर के प्रांगण में आचार्य श्री भारमलजी स्वामी की पाषाणमय चरण पादुकाएँ स्थापित हैं।
- रूण (जिला-नागौर) में स्व. युवाचार्य मिश्रीमलजी म. मधुकर की प्रेरणा से बनी हुई स्व. हजारीमलजी म. की संगमरमर की बड़ी मूर्ति है।
- जैतारण के पास गिरिगांव में स्थानक के गोखड़े में स्था. मुनि श्री हर्षचन्द्रजी म. की मूर्ति है।
- जसोल (जिला-बाड़मेर) में तेरापंथी संत स्व. जीवणमलजी स्वामी की संगमरमर की मूर्ति है।

जिंदा रहने के लिए प्राणवायु (ओक्सीझन) की तरह धर्म में मूर्तिपूजा की आवश्यकता व प्राचीनता को अब सभी ने स्वीकार किया है।

- तीर्थंकर ओघा मुहपत्ति नहीं रखते हैं। – समवायांग सूत्र
- गौतम स्वामी मुहपत्ति नहीं बांधते थे। –विपाक सूत्रे-दुःख विपाक
- विक्रम संवत् 1708 में लवजी स्वामी ने मुहपत्ति बांधने की नई प्रथा चलाई है।

जिनके दर्शन से मिटे, जन्म-जन्म के पाप,
जिनके पूजन से कटे, भव-भव के संताप,
ऐसे श्री जिनराज को, वन्दो बारम्बार।

युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी ने कहा –

"मैं तो हमेशा जाता हूं मन्दिरों में। अनेक स्थलों पर प्रवचन भी किया है। आज भीनमाल में श्री पार्श्वनाथ मंदिर में गया। स्तुति गाई। बहुत आनन्द आया।"

– जैन भारती पृष्ठ 23 वर्ष 31 अंक 16-17, दि. 20-7-83 तेरापंथ अंक

आपको भी जैन मन्दिरों में प्रतिदिन दर्शन-पूजन करके आनन्द लेना चाहिए।

धन गया तो कुछ नहीं गया, चरित्र गया तो सब कुछ गया।